IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

गीता दर्शन का तात्विक विवेचन एवं शिक्षा

डॉ. सीमा मिश्रा,

विभागाध्यक्ष शिक्षाशास्त्र विभाग

ए. पी. सेन मेमोरियल गर्ल्स पी. जी. कॉलेज लखनऊ

Doi: https://doi.org/10.56975/ijcrt.v14i8.312710

सारांश-: श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय विचारधारा का एक अत्यंत लोकप्रिय दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों से ओतप्रोत काव्य एवं भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। गीता केवल हिंदू धर्म का ग्रंथ नहीं अपितु वह विश्व धर्म ग्रंथ है। गीता में ऐसे परमात्मा का परम तत्व का वर्णन है जो सभी धर्मों संप्रदायों को मान्य है। गीता में उस समय के वेदमूलक सभी दर्शनों का समन्वय है। गीता धार्मिक ग्रंथ ही नहीं है बल्कि विषाद से मोक्ष तक की यात्रा है यह जीवन यात्रा ईश्वर के प्रति श्रद्धा विश्वास और आत्मसमर्पण की भावना पर आधारित है। आधुनिक युग में गीता का ज्ञान व्यक्तियों को कर्म करने की प्रेरणा देता है। गीता के दार्शनिक सिद्धान्त के व्यवहारिक पक्ष में कर्म योग की उपासना की गई है, जोकि हमें गीता के केन्द्र बिन्दु पर अवस्थित करता है। जीवन में किसी समस्या के आने पर हम गीता-दर्शन से प्रेरणा ले सकते हैं। देश-काल परिस्थिति में यह मनुष्यों के लिए आदर्श वाक्य है- 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' अर्थात् 'कर्म करते जाओ और फल की इच्छा मत करों'। गीता का प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का संदेश आज मानव के लिए अत्यंत उपयोगी है। गीता के अनुसार तपस्या और वैराग्य का मार्ग ही आवश्यक नहीं है बल्कि स्वधर्म पालन भी आवश्यक है। मनुष्य का लक्ष्य केवल कर्म है, उसका फल नहीं परिणाम का विचार किये बिना ही कर्म करना सत्य मार्ग है। श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान प्राप्ति को शिक्षा कहा गया है। गीता दर्शन के अनुसार ' वास्तविक शिक्षा वह है जो हमें इस योग्य बनाती है कि हम प्राणी की आत्मा में ईश्वर की सत्ता ही देखें।' शिक्षा ही वह स्रोत है जिससे द्वारा मनुष्य सांसारिक और आध्यात्मिक शान्ति को प्राप्त करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य सत्कर्म करता है क्योंकि कर्म ही पूजा है । ज्ञान के सदृश पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं है और ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है'न हि ज्ञानेन सादृशं पवित्रमिह विद्यते'। गीता दर्शन की शिक्षण विधियों में ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग का सुन्दर मिश्रित समन्वय है। गुरू तथा शिष्य के सम्बन्ध को गीता दर्शन में आदर्श रूप में दर्शाया गया है। अर्जुन (शिष्य) द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर श्रीकृष्ण (गुरु) क्रमवार देते जाते हैं। गीता में एक ऐसे शिष्य को दर्शाया गया है जो सीखने का इच्छुक है तथा अपने गुरु के प्रति श्रद्धावान है। अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गीता में दिया हुआ ज्ञान बहुत उपयोगी है। गीता में प्रतिपादित नैतिकता और मानवतावादी मूल्यों की आज की २१ वीं सदी की शिक्षा को अतीव आवश्यकता है.

मुख्य शब्द: कुरूक्षेत्र, सत्कर्म, निष्काम कर्म, सांसारिक, आध्यात्मिक, आत्मा की अमरता, परमात्मा, मोक्ष

प्रस्तावना-: श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय विचारधारा का एक अत्यंत लोकप्रिय दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों से ओतप्रोत काव्य एवं भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। गीता केवल हिंदू धर्म का ग्रंथ नहीं अपितु वह विश्व धर्म ग्रंथ है। गीता में ऐसे परमात्मा का परम तत्व का वर्णन है जो सभी धर्मों संप्रदायों को मान्य है। गीता में उस समय के वेदमूलक सभी दर्शनों का समन्वय है। गीता धार्मिक ग्रंथ ही नहीं है बल्कि विषाद से मोक्ष तक की यात्रा है यह जीवन यात्रा ईश्वर के प्रति श्रद्धा विश्वास और आत्मसमर्पण की भावना पर आधारित है। यह एक पूर्ण जीवन शास्त्र है। गीता महाभारत का हृदय है, उसकी आत्मा है। यह महाभारत के 'भीष्म पर्व' का एक भाग है अर्थात गीता महाभारत का एक अंग है जिसकी पृष्ठभूमि कुरुक्षेत्र की रणभूमि है। महाभारत का युद्ध प्रारंभ करने के पूर्व अर्जुन के हृदय में विचारों और संशयों का संघर्ष होता है इसको दूर करने के लिए अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण उन्हें उपदेश देते हैं और धर्म का मार्ग बताते हैं। मानव-जीवन में जो जटिलताएँ आ सकती हैं, मनुष्य के मन में जीवन को लेकर जो प्रश्न उदित हो सकते हैं, वे जटिलताएँ और प्रश्न अर्जन के माध्यम से गीता में अभिव्यक्त हैं। इसीलिए अर्जुन को जीव का प्रतिनिधि कहा गया है। भगवान् कृष्ण उन प्रश्नों की मीमांसा करते हैं।

गीता के अनुसार तपस्या और वैराग्य का मार्ग ही आवश्यक नहीं है बल्कि स्वधर्म पालन भी आवश्यक है। मनुष्य का लक्ष्य केवल कर्म है, उसका फल नहीं परिणाम का विचार किये बिना ही कर्म करना सत्य मार्ग है। गीता का प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का संदेश आज मानव के लिए अत्यंत उपयोगी है। फल की आसक्ति का त्याग ही कर्म स्वार्थ के धरातल से ऊपर उठकर कल्याण का साधन बन सकता है। गीता मनुष्य के सामाजिक स्वरूप पर बल देती है और निःस्वार्थ कर्मशील जीवन का समर्थन करती है। गीता में कुल १८ अध्याय और ७०० श्लोक हैं इन श्लोकों के अन्दर ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग मार्ग के बीच समन्वय स्थापित किया गया है। गीता का मत है इन सभी मार्गों का केन्द्र बिन्दू ईश्वर है और ये सभी एक ही साधन के भिन्न भिन्न पहलू हैं। गीता की तत्व मीमांसा में ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोंनों रूपों को स्वीकार किया गया है। गीता में उल्लिखित है कि ब्रह्म सत भी है, असत भी है और इन दोनों से परे भी है। गीता ब्रह्म को ही सब कुछ मानती है। ईश्वर की सत प्रवृति से जीव (आत्मा) और असत प्रवृति से द्रव्य (भौतिक जगत) की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार गीता जीव व जगत दोनों को सत्य और वास्तविक मानती है। गीता की ज्ञान मीमांसा स्वीकार करती है कि इस संसार में इस ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान निष्काम कर्म तथा स्वधर्म पालन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। गीता में कहा गया है कि जो मनुष्य स्वधर्म का पालन बिना किसी फल की इच्छा के करते हैं फल को भगवान को अर्पित करते हैं वे कभी भी ऐसा कार्य नहीं करते जिससे किसी अन्य प्राणी को कष्ट हो। अर्जुन ने राज्य लोभ से अलग होकर सत की रक्षा के लिए उसके फल को ईश्वर को समर्पित किया था। इसी निष्काम भाव को धारण कर मनुष्य को अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिए। आज मानवता के लिए इस शिक्षा की बहुत उपादेयता है। वर्तमान में लोग भौतिकता से परिपूर्ण जीवन जी रहे हैं। इस वजह से समाज में अशांति, अराजकता की स्थिति है। हमारा जीवन मानसिक दबावों व तनाव से भरा पडा़ है। यह पीडा़, व्यथा, विशाद, क्लेश इत्यादि से अक्रान्त है। किसी भी परीक्षा की घडी़ में हम विरोधी आवेगों से लड़खड़ा जाते हैं, और यह निश्चय नहीं कर पाते कि कौन सा मार्ग अपनायें अथवा क्या करें? वास्तव में मनुष्य की समस्या यह है कि जब परस्पर विरोधी आवेग हमारे समस्त प्रयत्नों को गतिहीन व अशक्त कर दें और हम अपने आप को पूर्ण अनिश्चित्ता की स्थिति में पायें तो उस अवस्था में एक संतुलित जीवन कैसे बितायें? कैसे अपनी मानसिक शांति को बनाये रखें? शोक व पीडा़ को किस प्रकार शान्तिपूर्वक सहन करें, परीक्षा के क्षणों में शांति और ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कैसे करें? इन समस्याओं को हल करने के मार्ग पर चलते हुए गीता मानव जीवन से संबंधित लगभग प्रत्येक समस्या का समाधान है। किसी समस्या के समाधान के लिए गीता व्यक्ति को निष्काम कर्म का आदेश देती है। मनुष्य के कर्म ही उसे समाज में मान-सम्मान व अपमान की अनुभूति कराते हैं जो श्रेष्ठ कर्म करता है वह सदैव समाज में पूजनीय व सम्मान को प्राप्त करता है।

आत्मा की अमरता का विचार

मनुष्य को जो कुछ भी करना चाहिए यह सोचकर करना नाहिये कि आत्मा का उस कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि आत्मा किसी श्री प्रकार के कर्मों का फल नहीं भोगता। आत्मा जन्म और मरण मभी से रहित है। वह किसी से प्रभावित नहीं होता। वह ब्रह्म की भाँति ही कूटस्थ नित्य है। मनुष्य को यह समझना चाहिए कि वह स्वयं आत्मा है जो नित्य है, शाश्वत है, अजर-अमर और अपरिवर्तनशील है। श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को यह बताया है कि मरने या जीने पर सुख दुख का अनुभव क्यों नहीं

होने देना चाहिए। गीता में उन्होंने आत्मा की अमरता और देह की क्षणभंगुरता का वर्णन किया है। आत्मा अमर है, वह ना जन्म लेता है ना मरता है, आत्मा का कभी नाश नहीं होता तो उसे कौन मार सकता है अतः 'मरा' और 'मारा' यह दोनों ही विचार मिथ्या है आत्मा पुराने वस्त्रों के समान पुरानी काया को त्याग कर नयी काया में प्रवेश लेती है अर्थात आत्मा अमर है।आत्मा की उत्पत्ति ईश्वर के सत् अंश से हुई है इसलिए ईश्वर तथा आत्मा में भेद नहीं होता जिस प्रकार ईश्वर सब में व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा भी सब में व्याप्त है। इस सम्बन्ध में श्लोक प्रचलित है- **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥** अर्थात जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्रों को धारण करता है उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर नये शरीर में प्रवेश करती है। यह आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अतः इसका अन्तिम लक्ष्य परमात्मा में विलिन होना है. अर्थात मोक्ष की प्राप्ति है। निष्काम कर्म अर्थात बिना स्वार्थ की भावना से काम करने से परमात्मा या मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। इसलिए मनुष्य को निष्काम कर्म करना चाहिए।

शरीर अनित्य है- मनुष्य को यह समझना चाहिये कि शरीर अनित्य और विनाशशील है। अतः शारीरिक सुख कभी नित्य नहीं हो सकते शरीर के नाश के साथ ही वे सुख भी नष्ट हो जाते हैं। अतः शरीर को पहुँचाने के लिए किसी फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए। शरीर क्षणभंगुर है। शरीर धर्म साधन के लिए आवश्यक है जैसा कि महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव नामक महाकाव्य में कहा है, शरीरमधं खलु धर्ममाधनम् । फिर यह भी विनाशशील अवश्य है, यह किसी जीव को नहीं भूलना चाहिए ।

अहं का त्याग व्यक्ति को यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि वह किसी भी कार्य का कर्त्ता है; क्योंकि कर्ता तो ईश्वर है, मनुष्य साधन मात्र है। कर्तापन के अभिमान से मुक्त होकर किया हुआ कर्म निष्काम कर्म कहलाता है।

कर्तव्य और नैतिकता पर विचार

गीता में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है, पाप क्या है, पुण्य क्या है इसका निर्णय करना सरल नहीं है इस विषय में बड़े-बड़े बुद्धिमान व्यक्ति भी मोहित है अर्थात वह भी निश्चय नहीं कर पाते हैं कि कर्तव्य क्या है और क्या नहीं है मनुष्य को कर्म(कर्तव्य) और अकर्म(अकर्तव्य) और निषिद्ध कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए वास्तव में कर्तव्य और अकर्तव्य देशकाल की परिस्थितियों पर निर्भर है उदाहरण हेतु नीम के पत्ते मानव के लिए कड़वे हैं पर बकरी के लिए मीठे पानी से भरी बाल्टी का भार हवा में कुछ और पानी में कुछ और होता है इसी प्रकार कर्तव्य की परिभाषा भी स्थिति पर निर्भर करती है कर्तव्य एक स्थिर तत्व नहीं है समयानुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है अर्थात कर्तव्य गतिशील है। ग्रहण करने योग्य जो अच्छी प्रवृत्तियां हैं वही धर्म अथवा कर्तव्य है किंतु वे अच्छी प्रवृत्तियां क्या है इसमें समय के अनुसार परिवर्तन होता है। सत्य भाषण, अहिंसा आदि अच्छी प्रवृत्तियां हैं किंतु विशेष परिस्थितियों में यही अकर्तव्य हो जाती है जैसे अहिंसा एक अच्छा गुण है किंतु अपने पर हानि पहुंचाने वाले पर अहिंसा का पालन अनुचित है यहां पर हिंसा ही कर्तव्य हो जाता है इसी कर्तव्य और अकर्तव्य, उचित-अनुचित को लेकर ही गीता की रचना हुई है।

गीता में वर्णित कर्म योग पर विचार

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया उसका सार यही है की जीवन में दो ही मार्ग हैं -कर्म योग और कर्म सन्यास कर्म सन्यास के अनुसार सभी कामों को त्याग कर हाथ बाँधे बैठे रहना होगा क्योंकि हम पग-पग पर सत्य अहिंसा आदि देखकर चले तो जीवन का निर्वाह असंभव हो जाएगा। श्री कृष्ण ने कर्म योग की भूरी-भूरी प्रशंसा की है –'**नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः** '॥८॥ **अर्थात अर्थात कर्मसन्यास मत लो कर्मयोगी बनो अपना नियत कर्म करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म के बिना तो शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता।** किंतु यहां भी मूल प्रश्न उठता है की कर्म क्या है वास्तव में न तो कोई कार्य (कर्तव्य) अच्छा है और ना कोई बुरा, केवल तत्व को समझने की बात है। कर्म ही सृष्टि है और सृष्टि ही कर्म है कर्म योग का अर्थ निष्काम भावना से कर्म करना है। **स्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर । असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥ अतः कर्मफल में आसक्त हुए बिना मनुष्य को अपना कर्तव्य समझ कर निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए क्योंकि अनासक्त होकर कर्म करने से उसे परब्रह्म (परम) की प्राप्ति होती है।** इस संसार में रहते

हुए निष्काम कर्म सहज ही हो सकते हैं परंतु हम अपने प्रत्येक कार्य में महत्व और अहं देखते हैं तथा कर्मों के फलों के प्रति आशावान रहते हैं। ऐसी फल की भावना से किया गया कार्य निर्वाण में तो बाधक है ही साथ ही फल न मिलने पर दुख दायक भी है। मनुष्य को केवल कर्मयोगी बनना चाहिए जो कि अपने अंतरात्मा में ही प्रसन्न व आनंदित रहता है और स्पर्श जनित विषयों से उसे आसक्ति नहीं रहती क्योंकि स्पर्श जनित भोग ही दुख के कारण है। कर्मयोगी भक्ति भाव से पूर्ण होकर अपने समस्त कर्मों को 'पत्रम् पुरुपम' की भांति ईश्वर के चरणों में चढ़ा देता है स्वार्थ भाव एवं संकीर्णता से ऊपर उठकर परमार्थ भाव एवं उदारता पूर्वक निष्काम कर्म करना भगवान की निष्ठा पूर्वक पूजा करने के समान है यह स्वयं महान यज्ञ हो जाता है। निष्काम कर्म करने से कार्य दक्षता और कार्यक्षमता बढ़ती है तथा व्यक्ति का आत्मविश्वास गहराता है। कर्मयोगी सरल, सात्विक और सहनशील होता है कर्मयोगी के लिए सत्य के मार्ग में सुदृढ़ रहना ईश्वर के लिए उपहार के समान है। भगवान श्री कृष्ण ने अपने मित्र सखा अर्जुन से बार-बार यही कहा है- 'हे अर्जुन तू जीवन में विषम परिस्थितियों से कभी पलायन मत कर समस्त चुनौतियों का साहस और कर्तव्य निष्ठा से डटकर मुकाबला कर और जय-पराजय, हानि-लाभ, यश-अपयश की चिंता मुझ पर(परमात्मा) पर छोड़ दे किसी भी दशा में अपने दायित्व को मत भूल, तू सर्वदा सम रहकर और आत्म-संयमी बनकर अपना कर्तव्य कर। कर्म फल परमात्मा के अधीन है तू निर्भय हो स्वधर्म पालन द्वारा परमात्मा को प्राप्त हो जा।'

आत्म-शुद्धि-कोई भी कर्म तभी निष्काम होगा जब वह शुद्ध आत्मा से किया जाय। यहाँ आत्मा और मन में विशेष अन्तर नहीं किया गया है। वैसे आत्मा सदैव शुद्ध, और मुक्त है। मन ही अशुद्ध रहता है और उनकी शुद्धि आवश्यक है।

ईश्वर में भक्ति एवं ईश्वर के प्रति समर्पण भाव

मनुष्य को जो भी कार्य करना हो उसके फल को ईश्वर के लिए अर्पित कर देना चाहिए। इससे यह लाभ है कि ईश्वर के प्रति भक्तिभाव से किया गया कर्म कभी बुरा नहीं होगा। ईश्वर की बुराई कभी भी न तो सच्चा भक्त सोच सकता है और नहीं वह कर सकता है। ईश्वर के प्रति भक्तिभावना आवश्यक है। भक्ति के लिए श्रद्धा और विश्वास बहुत ही आवश्यक है। श्रद्धा का क्षेत्र व्यापक है। अतः सच्ची श्रद्धा रखने वाला कभी धोखा नहीं खा सकता। ईश्वर का सच्चा भक्त जो कुछ भी करे उगे ईश्वर को अर्पित करके करेगा, अतः वह लोभ की भावना से विरक्त रहेगा

गीता का शिक्षा दर्शन समझने के लिए निम्न बिन्दुओं को जानना आवश्यक हैः-

१. विश्व तथा मानव की प्रकृति क्या है?

२. ज्ञान तथा सत्य(वास्तविकता)का स्वरूप क्या है?

गीता के अनुसार विश्व की प्रकृति

गीता के अन्तर्गत भगवान श्रीकृष्ण ने सृष्टि की रचना से सम्बन्धित संसार के दो प्रकार की प्रकृतियों का वर्णन किया है

पराप्रकृति

इसके अन्तर्गत जीवात्मा को पराप्रकृति माना गया है। इसी का शरीर में निवास होता है। यह पराप्रकृति ही सम्पूर्ण विश्व को धारण करती है तथा सचेतन तथ्य है।

अपराप्रकृति

इसके अन्तर्गत पृथ्वी, जल, आकाश, वायु तथा अग्नि इन पाँच तत्वों से मिलकर बनी है। इसे अचेतन या जड़ तत्य की की संज्ञा दी गई है। इस विश्व की रचना अपरा-प्रकृति और पराप्रकृति के संयोग के परिणामस्वरूप हुई है। जड़ तथा चेतन के मिलनोपरान्त सृष्टि निर्मित हुई।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः । निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ भौतिक प्रकृति तीन गुणों से युक्त है। ये हैं- सतो, रजो तथा तमोगुण। हे महाबाहु अर्जुन ! जब शाश्वत जीव प्रकृति के संसर्ग में आता है, तो वह इन गुणों से बँध जाता है। दिव्य होने के कारण जीव को इस भौतिक प्रकृति से कुछ भी लेना-देना नहीं है। फिर भी भौतिक जगत् द्वारा बद्ध हो जाने के कारण वह प्रकृति के तीनों गुणों के जादू के वशीभूत होकर कार्य करता है। चूँकि जीवों को प्रकृति की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर मिले हुए हैं, अतएव वे उसी प्रकृति के अनुसार कर्म करने के लिए प्रेरित होते हैं। यही अनेक प्रकार के सुख-दुःख का कारण है।

गीता के अनुसार मानव-प्रकृति

मनुष्य परा एवं अपरा दोनों प्रकृतियों से मिलकर बना है। जिसमें आत्मा परा है जो सचेत है और शरीर अपरा है जो अचेतन पदार्थ है। आत्मा नित्य, अविनाशी, अजन्मा, अव्यय, सर्वांगता, अव्यक्त, अचिन्त्य, अमर, और सनातन है।

गीता के अनुसार ज्ञान का स्वरूप

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान प्राप्ति को शिक्षा कहा गया है। गीता दर्शन के अनुसार ' **वास्तविक शिक्षा वह है जो हमें इस योग्य बनाती है कि हम प्राणी की आत्मा में ईश्वर की सत्ता ही देखें।' शिक्षा ही वह स्रोत है जिससे द्वारा मनुष्य सांसारिक और आध्यात्मिक शान्ति को प्राप्त करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य सत्कर्म करता है क्योंकि कर्म ही पूजा है ।** ज्ञान के सदृश पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं है और ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है'**न हि ज्ञानेन सादृशं पवित्रमिह विद्यते।**' गीता मनुष्य को स्वधर्म पालन की ओर प्रवृत करना चाहती है अर्थात सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्य को स्वधर्म पालन में दक्ष कर ईश्वर के दर्शन व मुक्ति (मोक्ष) दिलाती है। योग को ज्ञान प्राप्ति का मार्ग कहा गया है। इसमें कर्म योग एवं भक्ति योग का विशेष उल्लेख किया गया है। कर्म की परम सीमा ही ज्ञान है। कर्म से ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान प्राप्त होने पर व्यक्ति और आगे कार्य करने के लिए उद्यत होता है। इस प्रकार ज्ञान एवं कर्म दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। गीता में सात्विक, राजस एवं तामस तीनों प्रकार के ज्ञान का उल्लेख है। जिसमें सात्विक ज्ञान को श्रेष्ठ माना गया है।

गीता में ज्ञान को सांसारिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान मैं विभक्त किया गया है गीता मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में विश्वास करती है। गीता दर्शन में नैतिकता पूर्ण जीवन , व्यक्तित्व विकास तथा आध्यात्मिक विकास को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना गया है । इनके इन शैक्षिक् उद्देश्यों को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है-

१. **आध्यात्मिक विकास** - गीता के अनुसार मानव जीवन का मूल उद्देश्य ज्ञान के द्वारा अज्ञान निवर्तन है जिससे व्यक्ति को भगवत्प्राप्ति तथा स्वरूपज्ञान हो सके। इस जगत् को सत्य स्वीकार करना ही अज्ञान है। श्रीकृष्ण का मत है कि जीव का परम पुरूषार्थ जन्म-मरण चक्र से मुक्ति है। यह मुक्ति आत्मज्ञान से सम्भव है। इस हेतु अधिकारी भेद से ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग एवं भक्तिमार्ग से सम्बन्धित मार्ग का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार गीता का प्रमुख शैक्षिक उद्देश्य आध्यात्मिक विकास के द्वारा समभाव को प्राप्त करके सर्वत्र समत्व का दर्शन करना है। इस हेतु जिस चारित्रिक पवित्रता एवं आध्यात्मिक दृष्टि की आवश्यकता है उसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में सात्विक वृत्ति की प्रंशसा की गयी है।इस सात्विक वृत्ति तक पहुंचने में सबसे अधिक बाधक चंचल मन व मनोवृत्तियाँ हैं। अतः गीता में मनोनिग्रह को अनिवार्य बतलाया गया है।

२. **वैयक्तिक स्वतन्त्रता का विकास**- श्रीमद्भगवद्गीता आत्मनिर्धारणवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करती है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को आदि से अन्त तक भेद बताते है तथा उन्हें संसार की सत्यता तथा असत्यता का बोध विराट स्वरूप के दर्शन द्वारा कराते हैं किन्तु अन्ततः कहते हैं कि तुम स्वतन्त्र हो जैसी तुम्हारी इच्छा वैसा करो।अर्जुन को लक्ष्य करके कहे गये उपदेश का मन्तव्य है कि मैंने सभी प्रकार से गोपनीय सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विषयों से सम्बन्धित ज्ञान को तुमसे कह दिया। इस ज्ञान की सम्यक विवेचना करके स्वेच्छानुसार तुम कर्म करो। यह श्रीमद्भगवद्गीता के वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक आदर्श स्वतन्त्रता के संप्रत्यय का संपोषक है।

३. **सामाजिक विकास एवं राष्ट्रीय विकास**-श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा के मूल में लोककल्याण की भावना है। अपने व्यक्तिगत हितों को समष्टिगत हित में समाहित कर देना कर्म सिद्धान्त का प्रतिमान है। इस समष्टिगत हित हेतु नेतृत्व

कैसा होना चाहिए? इसका भी सम्यक विवेचना श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है।

४. **व्यक्तित्व विकास**- गीता मनुष्य के व्यक्तित्व विकास पर बल देती है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य सन्तुलित और साम्य प्राणी बनता है।श्रीकृष्ण का यह मन्तव्य है कि व्यक्ति को शिक्षित करके इतना ज्ञानी बना देना चाहिए उसका अनुसरण सब करें तथा उनका नेतृत्व सब स्वीकार करें।

उपर्युक्त शैक्षिक उद्देश्य जो श्रीमद्भगवद्गीता से निस्सृत है वे आज के परिवेश में पूर्णरूपेण अनुशीलनीय, ग्रहणीय एवं आचरणीय हैं तथा हमारे लिए ये बहुत ही मूल्यवान एवं प्रासंगिक हैं।

गीता दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम

श्रीमद्भगवद्गीता मे पाठ्यक्रम को दो भागों में विभक्त किया गया है

१. **अपरा विद्या** अर्थात **सांसारिक ज्ञान** जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार के विज्ञानों का अध्ययन, सभी भाषाओं, कला व साहित्य के ज्ञान को सम्मिलित किया गया है।

१. **परा विद्या** अर्थात **आध्यात्मिक ज्ञान** जिसके अन्तर्गत आत्म ज्ञान व ब्रह्म ज्ञान आता है जो नित्य व सनातन है नीतिपूर्ण व पूर्ण ज्ञान है जिसके अध्ययन से छात्रों में सदगुणों का उदय होता है। भगवद्गीता में प्रश्नोत्तर द्वारा ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया गया है जो परा ज्ञान व अपरा ज्ञान से प्राणी को अवगत कराता है। इन दोनों विद्याओं के अतिरिक्त गीता में पुरूषार्थ चतुष्टय- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को भी स्थान दिया गया है।

वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर पाठ्यक्रम

गीता दर्शन के अनुसार व्यक्ति की बुद्धि, रूचि, स्वभाव एवं कर्म के अनुसार उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला पाठ्यक्रम बनाया जाना चाहिए, जिससे उसकी सहज स्वाभाविक क्षमताओं का विकास हो सके। पाठ्यक्रम सिद्धान्त एवं व्यवहार में समन्वय स्थापित करने वाला हो।

गीता दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियां

गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग का अपूर्व समन्वय है. इन तीनों के लिए अलग-अलग शिक्षण विधियां बतलाई गई है। शिक्षण विधियां शिक्षार्थी की जन्मजात प्रवृत्तियों, योग्यता एवं रूचि पर आधारित होनी चाहिए। गीता दर्शन में **प्रश्नोत्तर विधि** को शिक्षण की मुख्य व प्रभावी विधि माना गया है। शिष्य अपने मन के संदेह प्रश्नों के रूप में प्रकट करता है, गुरु उनके सन्तोषपद उत्तर देता है व जिज्ञासाओं को शान्त करता है। गीता में इस विधि का प्रयोग कृष्ण-अर्जुन संवाद सर्वत्र मिलता है। अर्जुन महाबली हैं। वे नर के अवतार कहे गये हैं तथा उनकाचित्रण एक महनीय व्यक्ति के रूप में हुआ है। पर यह अर्जुन भी संशय से ग्रस्त होते हैं ! जीवन की इस पहेली का क्या रहस्य है ? संसार में आने-जाने का यह क्रम शाश्वत है या इसका अन्त किया जा सकता है ? हमारे जीवन का प्रयोजन क्या है ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो स्वाभाविक रूप से सबके मन में उठा करते हैं। इन प्रश्नों का उठना बुरा नहीं है। बल्कि यदि ये प्रश्न न उठें, तो समझना चाहिए कि मनुष्य की उन्नति कहों अवरुद्ध हो रही है। प्रारम्भ में युद्ध क्षेत्र में परिवारजनों के सम्मुख होता हुआ अर्जुन जब श्रीकृष्ण से पूछते है-'येषामर्थे कांक्षित नो राज्यं, मोगाः सुखानि च। ते इनेडवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्या धनानि च।।' अर्थात हम जिसके लिए राज्य, भोग और सुख की इच्छा कर रहे हैं, ये ही सब धन और जीवन की आशा छोड़कर युद्ध में खड़े हैं। अतः मैं राज्य और सुखों को नहीं चाहता, इस पर श्रीकृष्ण उसे समझाते है।

गीता दर्शन में **तर्क विधि** भी प्रमुख शिक्षण विधि है। गीता में अर्जुन व श्रीकृष्ण के बीच निरन्तर तर्क चलता रहता है तथा कृष्ण तर्क द्वारा अपने विचारों से अर्जुन को सुतुष्ट करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार गीता में प्रश्नोत्तर एवं तर्क वितर्क विधि द्वारा कृष्ण संवाद चलता रहता है। शंका समाधान में जिज्ञासु (शिक्षा) किसी भी गूढ विषय पर उत्पन्न हुए अपने मन के विचारों को शंका के रूप में विषयज्ञाता (गुरु) के समक्ष प्रस्तुत करता है और उसकी शंका का समाधान शिक्षक

या गुरू करता है। **प्रत्यक्ष विधि, श्रवण, मनन व निदिध्यासन विधियों** का प्रयोग छात्रों के लिए किया जाता है।

भगवद्गीता में शिक्षक को देवतुल्य व बालक को अव्यक्त पुरूषोत्तम की सुन्दरतम कृति माना गया है उसमें भी देवत्व विद्यमान है। गीता दर्शन के अनुसार शिक्षार्थी के शरीर एवं आत्मा का समान महत्व है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अत: प्रत्येक शिक्षार्थी में आत्मा रूपी परमात्मा ही निवास करता है। शिक्षार्थी के प्रत्येक कार्य आत्मा अर्थात अंत:करण की प्रेरणा से होते हैं। इस दर्शन में शिक्षार्थी से अपेक्षा की गई है कि वह संयम, विनय, शिक्षक के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण की भावना जैसे गुणों से युक्त हो। इसी प्रकार शिक्षक से भी अपेक्षा की गई है कि वह शिक्षार्थी में आत्मविश्वास एवं आशावाद उत्पन्न करेगा। शिक्षार्थी के आयु वर्ग के अनुकूल, अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप उसे शिक्षित कर उसका आत्मपरिष्कार करेगा तथा निष्काम कर्मयोग की भावना से जनहित के कार्यो में उसे प्रवृत्त करेगा जिससे कि वह शिक्षा का चरम लक्ष्य मोक्ष (जीवन में शांति तथा आनंद) प्राप्त कर सके। गीता में शिक्षक से अपेक्षा की गयी है कि वह अपने विचार शिष्य पर थोपे नहीं बल्कि उसे स्वयं अपना मार्ग चुनने की स्वतंत्रता दे।

अत: शिक्षा दर्शन के विकास में गीता का योगदान अति महत्वपूर्ण है। यह शिक्षा दर्शन सार्वभौम है धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश काल और परिस्थिति से परे है । पूरी गीता, ज्ञान का एक ग्रंथ है, जिसमें नर और नारायण के मध्य वार्तालाप द्वारा सत्य को प्रतिपादित किया गया है। कृष्ण यहाँ विश्व गुरू के रूप में है, जो अर्जुन के माध्यम से पूरे विश्व को विश्व की वास्तविकता से अवगत करा रहे है। आज के प्रजातान्त्रिक युग में दशांये गये मार्ग को अपनाना बहुत आवश्यक है, क्योकि आज व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों से विमुख हो गया है। जब-जब समाज में विकृतियां, कुरीतियां उत्पन्न होती हैं, तब-तब समाज को उन्नत करने के लिए परमात्मा को किसी शिक्षक के रूप में अवतार लेना पड़ता है और शिक्षक ही समाज में उत्पन्न कुंठा को दूर करने का प्रयास करता है। गीता में श्रीकृष्ण ने तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियों को दूर कर मानव को निष्काम कर्मयोग का पाठ पढ़ाने के लिए अवतार लेकर शिक्षक की भूमिका निभाई थी। इसका निष्काम कर्म योग आज भी निर्विवाद अपनी उपयोगिता को प्रकट कर रहा है । गीता की यह शिक्षा आज भी मूल्यवान है कि अपना हित चाहने वाले मानव को अपने संकीर्ण स्वार्थपरक आवेगों पर विजय प्राप्त करनी होगी। काम , क्रोध, लोभ, आदि पर संयम रखना होगा। श्रीमद्भगवद्गीता जैसा ग्रन्थ विश्व साहित्य में कदाचित ही देखने को मिले यही कारण है कि विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। आज के युवाओं को शिक्षकों को व शिक्षार्थियों को इस दर्शन को आत्मसात करना चाहिए। गीता में प्रतिपादित नैतिकता और मानवताचादी मूल्यों की आज की २१ वीं सदी की शिक्षा को अतीव आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. अग्रवाल, एस.के., शिक्षा के तात्विक सिद्धांत, मेरठ: राजेश पब्लिशिंग हाउस।

२. ओझा, मधुसूदन एवं त्रिपाठी, शिवसागर (१९९३), श्रीमद् भगवद्गीता विज्ञान भाष्यम, जयपुर: यूनीक ट्रेडर्स।

३. मल्लिका, महेश एवं मिश्रा, उर्मिला (२००१), नीति शास्त्र लखनऊ प्रकाशन केंद्र पृष्ठ सं. १७४-१७७

४. लाल, आर. बी., शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, मेरठ: आर.लाल बुक डिपो, ७७-८७

५. लोहनी, भास्करानन्द(१९९७), गीता का तात्विक विवेचन, लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

६. सिंह, बी.नीलकमल(१९९७), गीता योग संयम, नई दिल्ली:प्रकाशन संस्थान

७. यादव, विनय नारायण(२००७), श्रीमद् भगवद्गीता, वाराणसी: कला प्रकाशन।

जायसवाल, सीताराम (२०११), शिक्षा की अवधारणा, लखनऊ: प्रकाशन केंद्र

८. ओझा, मधुसूदन एवं त्रिपाठी, शिवसागर (१९९७), श्रीमद् भगवद्गीता विज्ञान भाष्यम, जयपुर: यूनीक ट्रेडर्स।
पौराणिक, आचार्य पंडित राम मूर्ति सखी (१९९७), श्रीमद् भागवत महापुराणम्, वाराणसी: चौखंबा विद्या भवन।
९. दुबे, सीताराम (२००७) वैदिक संस्कृति एवं उसका सातत्व, दिल्ली: प्रतिभा प्रकाशन।
१०. गुप्त, शिवशंकर (१९९०), श्रीमद् भागवत गीता, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
११. स्वामी आत्मानंद (२०००), गीता तत्व चिंतन (भाग १), कोलकाता: अद्वैत आश्रम।
१२. सारस्वत, मालती एवं गौतम,एस.एल., भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं, लखनऊ: आलोक प्रकाशन।
१३. सिन्हा, विनय कुमार(२००१), विश्व धर्म की अवधारणा, दिल्ली: भावना प्रकाशन।
१४. चौबे, ए. के., तिवारी, वी. के., एवं दुबे, आर. (२०१४)। प्रोफेशनलाइजेशन ऑफ एजुकेशन: ए क्रिटिकल एनालिसिस। ग्लोबल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च एंड डेवलपमेंट, २(१), १–११।